International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 817-820

मत्स्येन्द्र शुक्ल की कविता में सामाजिक चिन्तन

सृष्टि कुशवाहा
शोध छात्रा, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व और पश्चात् के साहित्य पर यदि नज़र डाली जाए, तो स्पष्ट होता है कि जिस तरह से जुझारु विचारों का प्रभाव तेजी से बढ़ा है उसी तरह से, और उसी तीव्रता के साथ प्रतिरोधी वादों के स्वरों की अभिव्यक्ति भी साहित्यिक धरातल पर दिखायी देती है। कलात्मकता एवं शैली तथा शिल्प के स्तर पर निश्चय ही साठ के दशक की कविता अपनी परख, सूझ–बूझ और विश्लेषण क्षमता का अद्भुत, असाधारण परिचय देती है। कवि, पाठक को अपनी लेखनी की सम्मोहन शक्ति से वहां तक ले जाने में पूरी तरह से सफल हुआ है जहां उम्मीद की कोई किरण फूटती नहीं दिखाई देती है।

छठे दशक की कविता में अपनी विलक्षण पहचान बनाने वाले कवि मत्स्येन्द्र शुक्ल को भविष्य के प्रति निरंतर एक ऐसी चिंता मथती रहती है जो उन्हें अपने कवि–कर्म और कविता के प्रति सचेत, सजग तथा सतर्क रहने की प्रेरणा देती है। ग्रामीण चेतना को जिस संयम और सूक्ष्मता से नागार्जुन एवं त्रिलोचन ने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है, वैसा ही प्रयास मत्स्येन्द्र शुक्ल की कविताओं में भी साफ झलकता है। इनके कविता संग्रह ''लोग उठेंगे एक दिन'' में संकलित कविता ''अब नहीं आयेगी वह रात'' ग्रामीण चेतना के सत्य को पूरी तरह उजागर करती है–

श्रम अंकुर बन
खुरिहारता है धरा का वक्ष
पुष्प गंध से गमकता है एक दिन पठार।

कवि मत्स्येन्द्र की रचनाओं में एक सीधा–सादा जीवन अंगड़ाई लेता है। वो जीवन की स्थापना और परिभाषा गढ़ने में ''कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा'' लाने के निर्मूल सिद्धान्त के पक्षपाती नहीं, बल्कि वह नए प्रतिमानों को स्थापित कर, पुरानी वर्जनाओं और जीर्ण–शीर्ण मान्यताओं को ध्वस्त कर, उस पर नए विचारों का एक मज़बूत दुर्ग बनाना चाहते हैं। कवि मत्स्येन्द्र गांव की व्यथा–कथा को, पीड़ा को, दर्द को जिस धैर्य, संयम विश्वास और साहस के साथ देखते हैं, वहां तक आते–आते उन तमाम कवियों की विचारधारा कुन्द पड़ जाती है जो केवल किनारे बैठकर नदी की गहराई का मात्र अनुमान लगाकर ही भयभीत हो जाते हैं। विचारों के शीशमहल में बैठकर सामान्य जन की पीड़ा को समझने का पाखण्ड करने वाले कवियों पर मत्स्येन्द्र शुक्ल ने करारा व्यंग्य किया है। इनकी कविताओं में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा वैश्विक परिदृश्य के स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान कराने तथा इन इकाइयों के समक्ष गहराती चुनौतियों का बोध कराने की अद्भुत क्षमता और अदम्य साहस नज़र आता है। मत्स्येन्द्र शुक्ल की कविताओं में ग्रामीण चिन्तन के साथ–साथ तमाम वो सन्दर्भ भी मुखरित हुए हैं जिन्होंने गांव की बुनावट में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनके अनुसार एक किसान जब सिर पर मुरेठा बांधकर निकलता है तो भारतीयता की प्रबल धारा उससे फूट कर बहने लगती है, इनकी कविताओं में साधारण जनता का दर्द बहुत दूर तक व्याप्त है। साधारण जन से इनका लगाव और पूंजीपतियों के प्रति गहरा आक्रोश इनकी प्रगतिवादी चेतना का बोधक है–

देश के लोगों !
ऊँचे इस मकान को ढहा दो
अनियंत्रित शैतान को भगा दो
गरीब वर्ग का शोषक हत्यारा
किसी क्षण दे सकता है
समूचे देश को धोखा।

मत्स्येन्द्र शुक्ल की कविता दुःख और संघर्षों के बीच निरंतर आस्था और अनास्था के भाव को रेखांकित करती है। इनकी कविताएं गहरे अर्थों में मानवीय चरित्रों के उन्नयन और विकास की कविताएं हैं। इन्होंने किसान–जीवन के वास्तविक सुख–दुख, कष्ट और संघर्ष की कहानी को तो अपनी कविता में स्थान दिया ही है, साथ ही उसके आत्मसम्मान ओर स्वाभिमान की गरिमा को खण्डित होने से बचाने का प्रयास भी किया है–

काम नही ंतो कहां मिलेगी रोटी
बच्चे नहीं रह सकते
बिन खाए
आसरे पर टिका है दिन का सूर्य।

कवि की कविताओं में समाजवाद को नए ढंग से परिभाषित करने का जो बीड़ा उठाया गया है वो उनकी लेखनी की विलक्षणता का स्पष्ट परिचायक है। किसी भी लेखक की सृजनात्मकता की सबसे बड़ी कसौटी होती है सत्य को बेबाकी से व्यक्त करना और मानवीय मूल्यों की स्थापना करना जिसका निर्वहन कवि ने बखूबी किया है। इनकी रचनाओं में ग्रामीण चेतना का सच तप कर और भी चमकने लगता है।

मत्स्येन्द्र शुक्ल की मान्यता है कि विश्वास और सादगी एक श्रमिक का आभूषण है। श्रम और प्रकृति के सहवास तथा समागम से उसके अन्दर का विश्वास और भी निखर जाता है। उसने जो पैदा किया उससे पूरा देश पेट भरता है इस बात पर उसे गर्व है, और न सिर्फ गर्व है बल्कि तसल्ली भी है कि उसकी मेहनत रंग ला रही है। कवि के अनुसार श्रम जीवन को नऐ सन्दर्भों में व्याख्यायित करता है–

समस्याओं से दबे समूह को देख
द्रवित नहीं होता समाज
जबकि श्रम के बल वहीं देता है
देश को शक्ति
ममता समता का आसाधारण सिद्धान्त।

कवि आम आदमी के जीवन के विविध सन्दर्भों को टटोलकर भीतर तक उसकी पड़ताल करता है। इनकी रचनाओं में उन राजनेताओं का भी पर्दाफाश किया गया है जो अपने चेहरे पर जाने कितने मुखौटे लगाकर देश की भोली भाली जनता के विश्वास को ठगते हैं ओर उनके साथ फरेब रचते हैं। सरकारी वायदे तो बहुत किए जाते हैं लेकिन इसका लाभ जनता को कितना मिल पाता है इसका भी वर्णन कवि ने यथास्थान किया है। उनकी लेखनी से स्पष्ट होता है कि व्यवस्था की ढोल में कितने पोल हैं–

पुराना जमाना जैसा था
वैसा नही है अब
फिलहाल जो है
सभ्यता के नाम पर ढोना पड़ेगा हमें

कवि मत्स्येन्द्र घटनाओं के कवि न होकर मूल्यों के प्रति सजग और सतत् आस्थावान बने रहने वाले, साधारण जन के कवि हैं। इनकी कविताओं में मनुष्य के जीवन दर्शन और दशाओं को अत्यधिक वेग के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है। कवि के मानवीय अनुभव और उनकी जीवन दशाओं की सफल अभिव्यक्ति संघर्ष, आस्था, जिजीविषा, प्रेम, न्याय, तथा स्वतंत्रता जैसे उन तमाम मानवीय संदर्भों को स्थापित करती है जो मनुष्य की आत्मा के विकास के लिए परमावश्यक है। इसलिए ये सत्य तो निर्विवाद रुप से उद्घाटित होता है कि कवि की कविताएं मानवीय मूल्यों और संवेगों की कविताएं हैं जो सतह के नीचे छिपी सच्चाइयों को उजागर करने में हमारी सहायता करती हैं तथा इन सच्चाइयों को पहचानने के लिए एक अन्तर्दृष्टि प्रदान करती हैं।
कवि कविता को सृजनशील संघर्षों से उबारकर एक नयी मंज़िल की ओर ले जाने में सक्षम हुए हैं। कविता की रक्षा जीवन की रक्षा है क्योंकि कविता ही कवि का जीवन है। यदि इस जीवन को सही मार्ग नहीं प्रदान किया गया तो आगे चलकर कविता का भावों की सहजता से कट जाना स्वाभाविक है। और फिर कवि को उसे भावों की दुनिया में वापस ले जाना काफी कठिन प्रतीत होने लगता है। कवि कहते हैं–

छोटी सी एक नदी
चली थी बड़े चाव से
बड़ी नदी से नहीं मिल पाए भाव
यथावत् पड़ी है युगों से
नही बन पाया
इतिहास ।

मत्स्येन्द्र शुक्ल की बहुआयामी कविता अपने सारे तेवर के साथ ग्रामीण चिन्तन में हर जगह मौजूद है। इन कविताओं में मत्स्येन्द्र शुक्ल के व्यक्तित्व की अमिट छाप गहराई से सबको प्रभावित करती है। इनकी कविताओं में गांव का किसान और मजदूर अपनी लाचारी ओर दयनीय स्थिति से लगातार जूझ रहा है। इन मसलों पर कवि बेबाक हमला करने का अभिलाषी रहा है। ये कैसी विडम्बना है कि सम्पूर्ण चिन्तन और शासन तंत्र का हर दांव पेंच केवल गरीब और बेसहारा लोगों को बेज़बान बनाने पर तुला है। कवि का कोमल मन निरंतर इस छटपटाहट को महसूस करता है और हाथ–पांव भी मारता है कि कैसे सब ठीक हो ? तो उसका अन्तर्मन जवाब देता है कि एक न एक दिन इसका भ्रष्ट शासन तंत्र का अंत सुनिश्चित है। सत्ता का ये बवंडर जनाक्रोश के सामने टिक नहीं पाएगा। क्योंकि अब भीड़ मुट्ठी बांधकर निकल पड़ी है। –

मैं अकेला था और सामने से
गुज़र रही थी
एक भीड़
भीड़ में केवल तमतमाए चेहरे थे
कांपती हुई मुट्ठियां और हाथ।

ये बिल्कुल सत्य है कि मत्स्येन्द्र शुक्ल की कविताओं में जगह–जगह पर पीड़ित और शोषित मानवता को बंधनमुक्त कराने की छटपटाहट, साथ ही मानवीय गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने की ललक में कवि की निरछलता स्पष्ट झलकती है। आधुनिक युग का मानव आज विभिन्न समस्याओं से घिरा है, कवि मनुष्य को इन समस्याओं से छुटकारा दिलाने की जद्दोजहद में लगा है। कवि का मानना है कि जिस तरह की पतनशील व्यवस्था है चारों तरफ, उसी का प्रतिफलन है आदमी, और आदमी के बीच प्रेम की जो धारा प्रवाहित होती थी वह कहीं कुद सी पड़ गयी है। कवि का हृदय समुद्र के किनारे खड़े होकर विलीन होती लहरों में देश के अर्थहीन स्वरुप को देखकर चिन्तित हो उठता है–

पतनशील
ऐसे माहौल में,
क्रान्ति गीत सुना यह कहना
कि चलो आज़ाद मुल्क का निर्माण करें
कोई अर्थ नहीं रखता
नक्षत्रों से कहां मिलता है सूर्य का प्रकाश ।

भूख, मंहगाई, रोटी और आतंक जैसे शब्दों के बीच आज आम जनता कराह रही है। इस पीड़ा और दर्द से आक्रोशित जनता अपने भीतर भावों की असाधारण मशाल जलाकर कतारों में चलती चली जा रही है। हवा में हर कदम पर अनुत्तरित सवालों को लहराता देख एक क्रूर राजा अपनी हारी हुई सेना के साथ महल के एकान्त में कैद हो गया है। मत्स्येन्द्र शुक्ल की यह परिकल्पना निश्चित रुप में साधारण जनता के लिए आसाधारण सिद्ध होगी और हर व्यक्ति के भीतर विचारों के ज्वालामुखी के समान धधकती रहेगी–

उस आदमी के भीतर बन रहा था
विश्वास का अगम
महावृत्त
किन्तु जाने क्यों अंगार सा वह लहक रहा
स्वयं में।

मत्स्येन्द्र शुक्ल का कवि कर्म अपने प्रखर चिन्तन और जोश के साथ सृजनात्मक संभावानाओं की तहें परत–दर परत उधेड़ कर अनेक मौलिकताओं से हमें रु–ब–रु कराता है जहां एक तरफ चारों ओर फैली प्रकृति की हरीतिमा है तो दूसरी ओर प्रार्थनामय उनमुक्त लोकजीवन का विराट स्वरुप है। कवि ने विचारों और गहन

अनुभूतियों के जिन सूत्रों का आविष्कार ग्रामीण परिवेश को समझने के लिए किया है इससे उनके भीतर की कल्याणी सृष्टि की वीणा के तार झंकृत हो जाते हैं। यही वजह है कि ताल के बगल से जा रही टुन–टुन करती बैलगाड़ी की घंटियों में कवि को उदान्त लोकजीवन के स्वर सुनायी देते है।–

देश दुनिया में क्या हो रहा है
कब होगा अगला
युद्ध
बेखबर हैं गांव के लोग

कवि को देश की जनता पर पूर्ण विश्वास है कि एक न एक दिन वो शीर्ष पर बैठे भ्रष्ट शासन तंत्र की जड़ों को उखाड़ने में ज़रूर कामयाब होगी। कवि जानता है कि जनता को विचारों के बाड़े में कैद करके उसे सब कुछ चुपचाप सहन करने के लिए विवश किया जा रहा है। वो लोग जो इन्सानियत को वैचारिकता के खेमे में बांटकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे हैं उनके किले को ध्वस्त करने की इच्छा कवि मे प्रबल रुप से विद्यमान है। मत्स्येन्द्र शुक्ल का मानना है कि हम भले ही इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं लेकिन हम अपनी पुरातनता के मोह से अभी भी बाहर नहीं निकल सके हैं। अगर हम अब भी नहीं चेते तो एक दिन ये इक्कीसवीं सदी भी गुजर जाएगी और हम सिर्फ तमाशबीन बन कर रह जाएंगे–

आंख में काली पट्टी बांधे
अंधकार को बाहों से लिपटाए
चली जा रही है इक्कीसवीं शताब्दी
रेत भरी बह रही उदास राप्ती।

कवि की संवेदना में ग्रामीण और नगरीय भाव बोध चाहे जिस रुप में रहा हो परन्तु निष्ठा की उसमें कोई कभी नहीं थी। इन्होंने सामाजिक विसंगतियों को करीब से देखा है, महसूस किया है, भोगा ओर जिया है फिर उसे अपनी लेखनी का आधार बनाया है। कवि इन क्रूर विसंगतियों की हर परत, रंग और रेशे से भली प्रकार परिचित हैं। जब जीवन को सही दिशा मिल जाती है तो उसे गढ़ना नहीं पड़ता बल्कि वह स्वयं सुघड़ आकार ले लेता है और तराशी हुई किसी मूर्ति के समान हो जाता है। देश और गांव पर मुसीबतों का घना कोहरा अपनी चादर फैलाने में सफल हो रहा है यहीं कवि के अन्दर कुलबुलाती एक बेचैनी झांकने लगी है–

देश पर छाया था घनांधकार
इतिहास तब टहल रहा था
निर्जीव यन्त्र सा
बच्चों की मृत्यु के हाहाकार से
बेहद उदास थी पृथ्वी ।

भूख से तड़पते बच्चों को गोद में लेकर सिसक रही है पृथ्वी, लेकिन गगनचुम्बी इमारतों पर विकास की इबारत लिख रहे पूंजीपतियों के कानों में इन सिसकियों की गूंज नहीं सुनायी पड़ती। वास्तव में मनुष्य के जीवन पर ऐसा संकट, मूल्यों का ऐसा विघटन हमें बार–बार आगामी खतरों के प्रति सचेत रहने की सलाह देता है। ऐसे विघटन के गहन अंधकार में मनुष्य अपना बहुत कुछ गंवा बैठता है और वो क्या–क्या गंवाता है इसी की पड़ताल करते नज़र आते है मत्स्येन्द्र शुक्ल। हमारे सामाजिक सन्दर्भ इस अराजकता के आगे घुटने टेकने लगते हैं और ये अराजकता निरंतर इन सामाजिक सन्दर्भो को क्षति पहुचाने की कोशिश करती है। इन्हीं सब भयानक अराजकताओं के खिलाफ़ कवि का विद्रोही तेवर और भी प्रखर हो जाता है नैतिकता को तिलांजलि देकर, संवेदनाएं ताख पर रखी जा रही हैं। भ्रष्ट लोग घड़ियाली आंसू बहाकर अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में जनमानस के अनहुए पहलुओं को उजागर करने में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। कवि का चिन्तन और सूक्ष्य पर्यवेक्षण क्षमता ही इनकी सोच को और धारदार बनाती है।

सामाजिक सरोकारों में नारी जीवन कितना उपेक्षित रहा है इसकी जांच–परख भी इनकी रचनाओं में यथास्थान देखने को मिलती है। देश अभी भी एक ऐसी स्थिति से गुज़र रहा है जहां एक औरत को अपने ही अस्तित्व के लिए जूझना पड़ रहा है। एक ऐसी विधवा स्त्री की आवाज़ कवि लोगों को सुनाना चाहते हैं जो अपने बेटे की लाश लिए कहीं गुम हो गयी है–

औरत की गुहार में
नहीं शमिल होता कोई व्यक्ति
समाज, राष्ट्र
अव्यवस्था के नद में डूबा है सारा देश।

तेज़ी से राख़ और धुंए के कुहासे के बीच यथार्थ अपनी तस्वीरें बदल रहा है। और इस बदलते यथार्थ में कवि पूरे परिवेश और एक–एक सन्दर्भ को भी बदला हुआ पाता है। कवि देखता है कि मजबूरी का लबादा ओढ़े, चेहरे पर भूख के जंगल उगाए सैकड़ों की संख्या में मज़दूर हर दिन लेबर चौराहे पर बिकने के लिए तैयार खड़े रहते हैं। व उनका मन किस तरह से बिक रहा है यही भाव है अगली पंक्तियों में –

रोज़ बिकने को खड़ा
बिकता है वह
कभी कम
कभी ठीक दाम पाता हैं वह।

इसमे तनिक भी संदेह नहीं कि कवि की व्यथित मनोदशा रचना की जटिलता को, उसके सम्पूर्ण चिन्तन को जीवन के कभी न मिटने वाले यथार्थ को समझने में काफी सहायता करती है।

कवि के अनुसार सभी ने अपने–2 हिसाब से गाँव की वकालत की परन्तु गाँव के हिस्से में सिर्फ कष्ट और पीड़ा ही आयी। अत्याचार करने वाला कोई और नहीं हमारे आपके बीच का ही है। वह हर कदम पर हमारे विश्वास के साथ छल करता है। आम जनता की पीड़ा और दुःख से इन राजनीतिक मसीहाओं को कुछ लेना देना नहीं वे तो बस गरीबी के यथार्थ का चटकारे लेकर वर्णन करना जानते हैं। कवि कहते हैं–

लोहे की कील पर
थिरकते बुलबुल सा
नेता बकता है डेढ़ टांग
बेतलब के मुद्दों पर।

व्यर्थ के बखान में ही इनका पूरा समय बीत जाता है ये क्या समझेंगे ? आज भारत का हृदय कहे जाने वाले गांव किस बदहाली के शिकार हो रहे हैं ये किसी से छिपा नहीं। जनता की आवाज़ को जूतों तले रौंद दिया जाता है। उनकी रगों में मुआवजे ज़हर ठूंस दिया जाता है। अरबों खरबों का घोटाला कागज़ी कार्रवाई बन

कर रह गया है। आज भौतिकतावाद की अंधी दौड़ ने हमारे सामने अनेक सवाल खड़े कर दिए है, पर उनके जवाब किसी के पास नहीं। इन्हीं सवालों का जवाब नहीं मिलने के कारण एक पीड़ा मत्स्येन्द्र शुक्ल के मन को व्यथित किए रहती है। इनकी कविताएं ऐसी नहीं है जो पाठक की सरसरी दृष्टि तक ही सीमित रहें बल्कि वो पाठक के मन की पड़ताल कर उसकी नब्ज़ को टटोलने का प्रयास करती सी दिखायी देती हैं। एक निर्मल और निश्छल सरलता बार–बार उनके भावों के झरोखे से झांकती रहती है और बरबस ही चित्त को आकृष्ट कर परिचय का एक गठबंधन बांध लेती है। जब वो हमारे सामने आती है तो हमारी सी प्रतीत होने लगती है। हमारे जैसे असंख्य सपने कवि के भी हैं, उन सपनों को पूरा करने की शिद्दत और जद्दोजहद एक बेचैनी की तरह कवि को उद्वेलित करती रहती है।

कुछ आलोचक ने कवि की दृष्टि को एकांगी बताते हुए उन पर पक्षपात करने का आरोप लगाते हैं और कहते हैं कि उन्होंने आम जीवन की तल्ख सच्चाईयों को साफगोई से बयां नहीं किया। मत्स्येन्द्र शुक्ल ने सिर्फ मार्क्सवादी चश्मा लगाकर जीवन को देखने की कोशिश की। अब आलोचक कुछ भी कहें लेकिन इतना तो तय है कि कवि की सृजनात्मकता और जनपक्षधरता उन्हें अग्रिम पंक्तियों में स्थान दिलाती है। बाकी का निर्णय कवि पाठकों पर छोड़ देता है। आज का व्यक्ति जिस घुटन भरी ज़िंदगी को जीने के लिए विवश है उसके लिए वो तानाशाह परिस्थितियां ज़िम्मेदार हैं जो क्रूर शासकों द्वारा पैदा की जाती हैं। हम जिस युग में सांस ले रहे हैं वो युग बनावटीपन का है दिखावे का है। चाय कॉफी के ठहाकों के बीच हमारा खोखलापन हमारी ही खिल्ली उड़ाता नज़र आता है।

''पेड़ भी कुछ कहते हैं'' की लगभग सभी कविताएं धूल से सने गांव की दरिद्रता और दैन्यता का बोझ अपने कंधों पर उठाए किसान की विवशता, उसकी मूक वाणी, पराधीनता और देश की लोकतांत्रिक प्रणाली और उसकी दमघोंटू व्यवस्था के बीच बड़ी मुश्किल से सांस ले पा रहे आम आदमी की पीड़ा के स्वर को मुखरित करती सी नज़र आती हैं। इनकी कविताएं लोक जीवन से सम्पृक्त हैं। अनेक मुहावरों और कहावतों को कवि ने अपनी रचना दृष्टि में समेट कर एक नयी पहचान के रुप में आगे बढ़ाया है। उन्होंने कोमल और कठोर उन सभी शब्दों को अपनाया जो समाज में अपनी छोटी से छोटी भूमिका के लिए ज़रुरी थे। मत्स्येन्द्र शुक्ल मध्य वर्ग और निम्न वर्ग की विद्रूपताओं तथा उत्कट जिजीविषा के मर्म को व्यक्त करने वाले कवि हैं। अतः समग्रता को अपनी रचनाओं में समेटे मत्स्येन्द्र शुक्ल अतिरेक के नहीं सार्थक जीवन संदर्भों के कवि हैं, वास्तविक अर्थो में वो एक लोक कवि हैं, जनसाधारण के कवि हैं।

सन्दर्भ

1. लोग उठेंगे एक दिन, पृ0–22
2. आदिम राग, पृष्ठ–103
3. कितना शान्त है जंगल, पृष्ठ–45
4. अंत में कुछ नहीं बचता पृ0, 31
5. लोग उठेंगे एक दिन, पृ0–12
6. कितना शान्त है जंगल, पृष्ठ–23
7. अंत में कुछ नहीं बचता, पृष्ठ–61
8. अंत में कुछ नहीं बचता पृ0–38
9. अंत में कुछ नहीं बचता, पृष्ठ–46
10. यह अपना इतिहास, पृ0–16
11. विकल्प और भी हैं, पृष्ठ–11
12. लोग उठेंगे एक दिन, पृ0–75
13. ये अपना इतिहास, पृ0–53
14. ये अपना इतिहास, पृष्ठ–14
15. लोग उठेंगे एक दिन, पृ0–31